Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2026 = 8.727
https://www.srjis.com/issues_data/304
Peer Reviewed & Refereed Journal, SEPT-OCT 2026, Vol- 15/97

वेदों में पर्यावरण चिन्तन : एक अध्ययन

डॉ. सीमा रानी शर्मा,
संस्कृत विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

Paper Received On: 1 OCT 2026
Peer Reviewed On: 16 OCT 2026
Published On: 01 NOV 2026

पर्यावरण का संकट आज किसी एक देश या एक विज्ञान-शाखा की समस्या नहीं रहा; वायु, जल और मिट्टी के प्रदूषण, वनों के क्षरण तथा जलवायु-परिवर्तन ने इसे मानव-सभ्यता का केन्द्रीय प्रश्न बना दिया है [1]। ऐसे समय में प्राचीन भारतीय ज्ञान-परम्परा की ओर लौटकर यह देखना उपयोगी है कि मानव और प्रकृति के सम्बन्ध को उसने किस दृष्टि से समझा था। प्रस्तुत अध्ययन में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के मन्त्रों के आधार पर वैदिक पर्यावरण-चिन्तन को क्रमबद्ध रूप में रखने का प्रयास किया गया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वैदिक संहिताएँ मूलतः स्तुति, यज्ञ और जीवन-दर्शन के ग्रन्थ हैं, आधुनिक अर्थ में पर्यावरण-विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें नहीं; अतः उनके मन्त्रों को पर्यावरणीय निर्देश के रूप में पढ़ते समय मूल अर्थ और परवर्ती भाष्य-परम्परा, दोनों का ध्यान रखना होगा [2], [3]। इस अध्ययन की सामग्री का एक महत्त्वपूर्ण भाग स्वर्गीय डॉ. रामनाथ वेदालंकार के लेख 'वेदों में पर्यावरण विज्ञान' (प्रस्तोता प्रियांशु सेठ, सहयोगी डॉ. विवेक आर्य) से लिया गया है [4], जिसे यथास्थान सुरक्षित रखते हुए अन्य स्रोतों से पुष्ट और विस्तृत किया गया है।

वेद भारत के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। संसार का कोई भी ऐसा ज्ञान अथवा विद्या नहीं है जिसका विश्लेषण वेद में नहीं हुआ हो। 'सर्वज्ञानमयो हि सः वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्' इत्यादि सूक्तियाँ भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि वह ज्ञान चाहे प्राणिविज्ञान हो, जीव विज्ञान हो, गणित विज्ञान हो या आयुर्विज्ञान हो चाहे पर्यावरण विज्ञान ही क्यों ना हो इन सभी विज्ञानों का मूल वेदों में निहित है।

भाषा-वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से ऋग्वेद को इण्डो-आर्य भाषा-परिवार का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ माना जाता है, जिसकी रचना का काल विद्वान् प्रायः ईसा-पूर्व 1500 से 1000 के बीच मानते हैं, यद्यपि इस विषय में मतभेद विद्यमान हैं [5]। चार संहिताओं के साथ ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ भी वैदिक वाङ्मय के अंग माने जाते हैं। इस विशाल वाङ्मय में प्रकृति के तत्त्वों—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र, वनस्पति और ओषधियों—के लिए सूक्त रचे गए हैं और उन्हें 'देवता' की संज्ञा दी गई है। इस संज्ञा का तात्पर्य प्रकृति के प्रति पूज्य-भाव, कृतज्ञता और उत्तरदायित्व की भावना से है, जो वैदिक पर्यावरण-चिन्तन का मूल आधार है [6], [7]।

Copyright © 2026, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

पर्यावरण शब्द 'परि' एवं 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'वृ'-आवरणे धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। पर्यावरण का सामान्य अर्थ है - हमारे चारों ओर का वातावरण, जिसमें हम आवृत्त हैं, वह पर्यावरण कहलाता है। हमारे चारों ओर विद्यमान जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, वृक्ष इत्यादि पर्यावरण के ही घटक हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'पर्यावरण' शब्द अपने वर्तमान पारिभाषिक अर्थ में अंग्रेज़ी 'एन्वायरनमेंट' के पर्याय के रूप में आधुनिक काल में प्रचलित हुआ है; वैदिक संहिताओं में यह शब्द इसी रूप में नहीं मिलता, किन्तु उसके सभी घटक—भूमि, आपः, वात, अन्तरिक्ष, द्यौ, ओषधि और वनस्पति—बार-बार और अत्यन्त आदर के साथ स्मरण किए गए हैं। वैदिक चिन्तन का केन्द्रीय सिद्धान्त 'ऋत' है, अर्थात् वह सार्वभौम व्यवस्था जिसके अनुसार सूर्य उदित होता है, ऋतुएँ आती-जाती हैं और जल प्रवाहित होता है; मनुष्य से अपेक्षा की गई है कि वह इस व्यवस्था के अनुकूल आचरण करे [2]। इसी भावना का सबसे संक्षिप्त और सुन्दर प्रकटीकरण शुक्ल यजुर्वेद के शान्तिपाठ में हुआ है—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ -यजु० ३६/१७

द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ, सब देव और सम्पूर्ण जगत् शान्त, अर्थात् सन्तुलित और कल्याणकारी रहें; वह शान्ति मुझे भी प्राप्त हो। इस मन्त्र में पर्यावरण के प्रायः सभी घटकों का एक साथ नामोल्लेख है, इसीलिए इसे वैदिक पर्यावरण-चिन्तन का सार कहा जा सकता है।

हमारे ऋषि मुनियों ने कभी भी प्रकृति को अपने से अलग करके नहीं देखा। ये सभी घटक जीवन धारक अवयव हैं। मानव द्वारा की जाने वाली समस्त क्रियाओं का प्रभाव पर्यावरण पर नियमित रूप से पड़ता है, इनसे पर्यावरण परिवर्तित होता है; और प्रदूषण उत्पन्न हो सकता है जो मानव के लिए हानिकारक है। आज वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति और बढ़ती हुई जनसंख्या ने पर्यावरण को इस प्रकार प्रदूषित करना प्रारम्भ कर दिया है कि ये नैसर्गिक शक्तियाँ पर्यावरण को पूर्ण रूप से शुद्ध करने में असमर्थ हो रही हैं। प्रदूषण का अर्थ है – वायु, जल, मिट्टी आदि का अवांछित द्रव्यों से युक्त होना।

आधुनिक विज्ञान भी प्रदूषण को लगभग इसी रूप में परिभाषित करता है—किसी पर्यावरणीय माध्यम में ऐसे पदार्थों या ऊर्जा का प्रवेश जो उसकी प्राकृतिक संरचना को बदलकर जीवों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाए। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के अनुसार वायु-प्रदूषण के कारण प्रतिवर्ष लगभग सत्तर लाख लोगों की असामयिक मृत्यु होती है, और संगठन ने 2021 के संशोधित दिशानिर्देशों में सूक्ष्म कणों (पीएम 2.5) की वार्षिक औसत सीमा घटाकर 5 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर कर दी है [8]। इस पृष्ठभूमि में ऋषियों की वह दृष्टि और भी प्रासंगिक हो जाती है जिसमें प्रदूषण को केवल बाहरी भौतिक समस्या न मानकर जीवन-शैली, उपभोग और मानसिकता से जोड़कर देखा गया है। ईशावास्य उपनिषद् का, जो शुक्ल यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है, आरम्भिक मन्त्र इसका उत्कृष्ट उदाहरण है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ -यजु० ४०/१

इस गतिशील जगत् में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर से आच्छादित है; इसलिए त्यागपूर्वक, अर्थात् आवश्यकता भर उपभोग कर, और किसी के भी धन का लोभ मत कर [23]। संयमित उपभोग की यह भावना आज के 'सतत विकास' के विचार से मेल खाती है, जिसे 1987 की ब्रंटलैंड आयोग रिपोर्ट ने इस

रूप में परिभाषित किया था कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएँ इस प्रकार पूरी की जाएँ कि भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने की क्षमता को क्षति न पहुँचे [9]।

वेदों में पृथ्वी, जल, वायु और आकाश की परिशुद्धि एवं इनके संरक्षण हेतु अनेक मन्त्रों में निर्देश दिया गया है। अपने श्रेष्ठ जीवन की याचना सूर्यदेव से की गई है।

वेद का सन्देश है कि मानव शुद्ध वायु में श्वास ले, शुद्ध जल को पान करे, शुद्ध अन्न का भोजन करे, शुद्ध मिट्टी में खेले-कूदे, शुद्ध भूमि में खेती करे। ऐसा होने पर ही उसे वेद-प्रतिपादित सौ वर्ष या सौ से भी अधिक वर्ष की आयु प्राप्त हो सकती है। परन्तु आज न केवल हमारे देश में, अपितु विदेशों में भी प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि मनुष्य को न शुद्ध वायु सुलभ है, न शुद्ध जल सुलभ है, न शुद्ध अन्न सुलभ है, न शुद्ध मिट्टी और शुद्ध भूमि सुलभ है। कल-कारखानों से निकले अपद्रव्य, धुओं, गैस, कूड़ा-कचरा, वन-विनाश आदि इस प्रदूषण के कारण हैं। प्रदूषण इस स्थिति तक पहुंच गया है कि कई स्थानों पर तेजाबयुक्त वर्षा तक हो रही है। 18 जुलाई, 1983 के दिन भारत के बम्बई शहर में तेजाबयुक्त वर्षा हो चुकी है। यदि प्रदूषण निरन्तर बढ़ता गया तो वह दिन दूर नहीं जब यह भूमि मानव तथा अन्य प्राणियों के निवासयोग्य नहीं रह जायेगी।

सूर्यदेव से श्रेष्ठ जीवन की इस याचना का सर्वाधिक प्रसिद्ध रूप यजुर्वेद का यह मन्त्र है—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ -यजु० ३६/२४

देवों का हितकारी वह नेत्र (सूर्य) पूर्व दिशा में शुद्ध रूप से उदित होता है; हम सौ वर्ष देखें, सौ वर्ष जीवें, सौ वर्ष सुनें, सौ वर्ष बोलें, सौ वर्ष दीनता-रहित रहें और सौ वर्ष से भी अधिक जीवित रहें। यह प्रार्थना तभी सार्थक हो सकती है जब वायु, जल, अन्न और भूमि स्वच्छ हों—यही वह बात है जो ऊपर वेद के सन्देश के रूप में कही गई है।

इस ब्रह्मांड में प्रकृति सबसे शक्तिशाली है क्योंकि यही सृजन एवं विकास और नाश करती है। प्राचीन काल से हम यह चिन्तन के अनुसार सुनते आये हैं कि जीव (मानव) पंचभूतों का सम्मिश्रण है इनमें से किसी एक का भी असंतुलन हमारे जीवन के लिए हानिकारक है। विकास के पथ पर मनुष्य जैसे जैसे आगे बढ़ा उसने प्रकृति का जिस प्रकार से दोहन किया उसका दुष्परिणाम आज हमें दिखाई दे रहा है। प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों की जीवन में क्या उपयोगिता है? इसका ज्ञान वैदिक काल में ही हो गया था। जीवन तो वस्तुतः है ही जीव और वन।

अग्नि, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, ओषधियाँ एवं वनस्पतियाँ प्रत्युपकार की इच्छा के बिना सदा हमारी सहायता कर रहे हैं।

वैदिक और उपनिषद् परम्परा में सृष्टि को पंचमहाभूतों—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—से निर्मित माना गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् में सृष्टि-क्रम का उल्लेख इस प्रकार है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः॥ -तैत्तिरीय उप० २/१

अर्थात् आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधियाँ, ओषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष उत्पन्न होता है [23]। यह क्रम एक प्रकार से जीवन के आधारों की

पारस्परिक निर्भरता और खाद्य-शृंखला को ही व्यक्त करता है, जिसमें मनुष्य अन्तिम कड़ी है और पूर्ववर्ती किसी भी कड़ी के असन्तुलन से उसका जीवन संकट में पड़ सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ, वर्षा, अन्न और प्राणियों का यही चक्र इस प्रकार वर्णित है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ -गीता ३/१४

अर्थात् अन्न से प्राणी बनते हैं, वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है, यज्ञ से वर्षा होती है और यज्ञ कर्म से सम्पन्न होता है [21]।

पर्यावरण-प्रदूषण की चिन्ताजनक स्थिति को देखकर 5 जून, 1972 को बारह संयुक्त राष्ट्रों की एक बैठक इस विषय पर विचार करने के लिए स्टाकहोम (स्वीडन) में आयोजित हुई थी, जिसके फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों द्वारा पर्यावरण-सुरक्षा हेतु प्रभावशाली कदम उठाए गए। उक्त गोष्ठी में भारत की तीसरी प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी 'पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति एवं उसका विश्व के भविष्य पर प्रभाव' विषय पर भाषण दिया था। उसके पश्चात् भारत में पर्यावरण-प्रदूषण का अध्ययन करने, उसे रोकने के उपाय सुझाने एवं उनके क्रियान्वयन हेतु अनेक सरकारी तथा व्यक्तिगत या जनता की ओर से सामूहिक प्रयास होते रहे हैं तथा आज भी अनेक संस्थाएं इस दिशा में कार्यरत हैं। प्रस्तुत लेख में हम यह दर्शायेंगे कि वेद का पर्यावरण के सम्बन्ध में क्या विचार है!

ऊपर उल्लिखित स्टॉकहोम सम्मेलन का औपचारिक नाम संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन था, जो 5 से 16 जून 1972 तक आयोजित हुआ और जिसमें 113 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया; इसी सम्मेलन की स्मृति में 5 जून को प्रतिवर्ष विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है और इसी के परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की स्थापना हुई [10]। इस सम्मेलन में श्रीमती इंदिरा गांधी ने गरीबी को सबसे बड़ा प्रदूषक बताते हुए विकास और पर्यावरण-संरक्षण को परस्पर विरोधी न मानने का आग्रह किया था। भारत में इसके बाद जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1974, वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1981 तथा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 बनाए गए; 42वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा अनुच्छेद 48-क में राज्य पर पर्यावरण-संरक्षण का दायित्व और अनुच्छेद 51-क(छ) में प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक कर्तव्य जोड़ा गया कि वह वन, झील, नदी और वन्य जीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे [11]। नागरिक के जिस कर्तव्य को आज संविधान ने स्वीकार किया है, उसकी पूर्वभूमिका वैदिक मन्त्रों में 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' जैसे वाक्यों में मिलती है, जिनकी चर्चा आगे की जाएगी। जहाँ तक बम्बई की तेजाबयुक्त वर्षा का प्रश्न है, अम्लीय वर्षा मुख्यतः सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइडों के वायुमण्डल में जलवाष्प से अभिक्रिया करने से बनती है, जो औद्योगिक उत्सर्जन और वाहनों के धुएँ से आते हैं [12]।

वायु में जीवन दायिनी शक्ति है इसीलिए इसकी स्वच्छता पर्यावरण की अनुकूलता के लिए परम अपेक्षित है। मानव जीवन का प्रमुख आधार वायु है। अथर्ववेद में 'आपो वाता ओषधयः' कहकर कहा गया है कि वायु औषधि है। जहाँ वायु होती है वहाँ अमृत का खजाना है। क्योंकि प्राणवायु के होने से ही श्वास प्रश्वास की प्रक्रिया सम्भव है, परन्तु मानव की असीमित महत्त्वाकांक्षाओं एवं इच्छाओं ने वायु को प्रदूषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। स्वच्छ वायु का सेवन ही प्राणियों के लिए हितकर है यह बात वेद के निम्न मन्त्रों से प्रकट होते हैं-

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ -ऋ० १०/१८६/१

वायु हमें ऐसा ओषध प्रदान करे, जो हमारे हृदय के लिए शांतिकर एवं आरोग्यकर हो, वायु हमारे आयु के दिनों को बढ़ाए।

वैदिक दृष्टि वायु की शुद्धि को जीवन के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानती है। इस तत्त्व को यजुर्वेद में इस प्रकार से स्पष्ट किया है – 'तनूनपात् सुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः ...' -यजुर्वेद २७।११

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे॥ -ऋ० १०/१८६/३

हे वायु! जो तेरे घर में अमृत की निधि रखी हुई है, उसमें से कुछ अंश हमें भी प्रदान कर, जिससे हम दीर्घजीवी हों।

यह वायु के अन्दर विद्यमान अमृत की निधि ओषजन या प्राणवायु है, जो हमें प्राण देती है तथा शारीरिक मलों को विनष्ट करती है। उक्त मन्त्रों से यह भी सूचित होता है कि प्रदूषित वायु में श्वास लेने से मनुष्य अल्पजीवी तथा स्वच्छ वायु में कार्बन-द्विओषिद की मात्रा कम तथा ओषजन की मात्रा अधिक होती है। उसमें श्वास लेने से हमें लाभ कैसे पहुंचता है, इसका वर्णन वेद के निम्नलिखित मन्त्रों में किया गया है-

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः॥
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे॥ -ऋ० १०/१३७/२,३ अथर्व० ४/१३/२,३

ये श्वास-निःश्वास रूप दो वायुएँ चलती हैं, एक बाहर से फेफड़ों के रक्त-समुद्र तक और दूसरी फेफड़ों से बाहर के वायुमंडल तक। इनमें से पहली, हे मनुष्य तुझे बल प्राप्त कराए और दूसरी रक्त में जो दोष है उसे अपने साथ बाहर ले जाये। हे शुद्ध वायु, तू अपने साथ ओषध को ला। हे वायु, शरीर में जो मल है उसे तू बाहर निकाल। तू सब रोगों की दवा है, तू देवों का दूत होकर विचरता है।

वायु के प्रति वैदिक ऋषियों की श्रद्धा 'मधु वाता ऋतायते' जैसे मन्त्रों में भी दिखाई देती है, जहाँ वायु, नदियों और ओषधियों से माधुर्य और कल्याण की कामना की गई है—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ -ऋ० १/९०/६

ऋत के अनुकूल चलने वाले के लिए वायु मधुर बहे, नदियाँ माधुर्य का स्रवण करें और ओषधियाँ हमारे लिए मधुर, अर्थात् सुखकारी हों [13], [2]। आधुनिक वायुमण्डलीय विज्ञान के अनुसार शुष्क वायु में लगभग 78 प्रतिशत नाइट्रोजन और लगभग 21 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है, जबकि कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व के लगभग 280 पीपीएम से बढ़कर अब 420 पीपीएम से अधिक हो चुकी है [14], [1]। इसलिए 'स्वच्छ वायु' का अर्थ केवल ऑक्सीजन की उपलब्धि नहीं, बल्कि कणीय पदार्थ, भू-स्तरीय ओज़ोन, सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा कार्बन मोनोऑक्साइड जैसे प्रदूषकों का स्वीकार्य सीमाओं के भीतर रहना भी है [8]। वायु के भीतर 'अमृत की निधि' को ओषजन या प्राणवायु मानना एक सुसंगत व्याख्या है, किन्तु मन्त्र का आशय इससे व्यापक है, अर्थात् वायु की वह समग्र जीवनदायी शक्ति

जो प्राण, स्वास्थ्य और दीर्घायु का आधार है; इसी कारण अथर्ववेद में प्राण को एक स्वतन्त्र सूक्त (११/४) में स्तुत किया गया है।

वनस्पतियों द्वारा वायु-शोधन- कार्बन-द्विओषिद की मात्रा आवश्यकता से अधिक बढ़ने पर वायु प्रदूषित हो जाता है। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि प्राणी ओषजन ग्रहण करते हैं तथा कार्बन-द्विओषिद छोड़ते हैं, किन्तु वनस्पतियां कार्बन-द्विओषिद ग्रहण करती हैं तथा ओषजन छोड़ती हैं। वनस्पतियों द्वारा ओषजन छोड़ने की यह प्रक्रिया प्रायः दिन में ही होती है, रात्रि में वे भी ओषजन ग्रहण करती तथा कार्बन-द्विओषिद छोड़ती हैं। पर कुछ वनस्पतियां ऐसी भी हैं जो रात्रि में भी ओषजन ही छोड़ती हैं। कार्बन-द्विओषिद को चूसने के कारण वनस्पतियां वायु-शोधन का कार्य करती हैं। वायु-प्रदूषण से बचाव के लिए सबसे कारगर उपाय वनस्पति-आरोपण है। वेद भगवान् का सन्देश है "वनस्पति वन आस्थापयध्वम् अर्थात् वन में वनस्पतियाँ उगाओ -ऋ० १०/१०१/११"। यदि वनस्पति को काटना भी पड़े तो ऐसे काटें कि उसमें सैकड़ों स्थानों पर फिर अंकुर फूट आएं। वेद का कथन है-

अयं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह, सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम॥ -यजु० ५/४३

हे वनस्पति, इस तेज कुल्हाड़े ने महान सौभाग्य के लिए तुझे काटा है, तू शतांकुर होती हुई बढ़, तेरा उपयोग करके हम सहस्रांकुर होते हुए वृद्धि को प्राप्त करें।

अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात्। -यजु० १२/१००

हे ओषधि, तू दीर्घायु होती हुई शत अंकुरों से बढ़।

यहाँ पौधों के गैस-विनिमय के विषय में एक वैज्ञानिक स्पष्टीकरण उपयोगी है। प्रकाश-संश्लेषण में पौधे सूर्य-प्रकाश की उपस्थिति में कार्बन-डाइऑक्साइड और जल से शर्करा बनाते तथा ऑक्सीजन मुक्त करते हैं; रात्रि में प्रकाश-संश्लेषण रुक जाता है, जबकि श्वसन चलता रहता है, जिससे पौधे ऑक्सीजन लेते और कार्बन-डाइऑक्साइड छोड़ते हैं। इसके अपवाद के रूप में क्रैसुलेशियन एसिड मेटाबॉलिज़्म (सी.ए.एम.) पथ वाले पौधे, जैसे कुछ रसीले पौधे, रात्रि में रन्ध्र खोलकर कार्बन-डाइऑक्साइड को कार्बनिक अम्लों के रूप में संचित कर लेते हैं और दिन में उसका उपयोग करते हैं [15]। इस प्रकार रात्रि में कार्बन-डाइऑक्साइड का अवशोषण तो इन पौधों में होता है, किन्तु ऑक्सीजन का मुक्त होना मुख्यतः दिन के प्रकाश में ही होता है। यजुर्वेद के उपर्युक्त मन्त्र की विशेषता यह है कि उसमें वृक्ष-कटाई को सर्वथा निषिद्ध न मानकर उसे पुनर्जनन की शर्त से जोड़ा गया है, जो आज की सतत वानिकी की मूल भावना है।

वेद सूचित करता है कि सूर्य और भूमि से वनस्पतियां में मधु उत्पन्न होता है, जिससे वे हमारे लिए लाभदायक होती हैं-

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्य्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ -यजु० १३/२९

वनस्पति हमारे लिए मधुमान हो, सूर्य हमारे लिए मधुमान् हो, भूमियाँ हमारे लिए मधुमती हों। यही मन्त्र कुछ पाठभेद के साथ ऋग्वेद (१/९०/८) में भी मिलता है, और उसी सूक्त के पूर्ववर्ती मन्त्र में रात्रि, उषा और पार्थिव धूलि तक के लिए माधुर्य की कामना की गई है—

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ -ऋ० १/९०/७

रात्रि और उषाएँ हमारे लिए मधुर हों, पृथ्वी की धूलि मधुर हो और द्युलोक रूपी पिता हमारे लिए मधुर हो। यहाँ 'मधु' शब्द केवल मिठास का नहीं, बल्कि अनुकूलता, पोषण और कल्याण का द्योतक है; सम्पूर्ण पर्यावरण के सुखकारी होने की यह कामना वर्तमान 'स्वस्थ पर्यावरण' की अवधारणा के निकट है [13]।

फूलों-फलों से लदी हुई ओषधियां नित्य भूमि पर लहलहाती रहें, ऐसा वर्णन भी वेद में मिलता है- "ओषधी: प्रतिमोदध्वं पुष्पवती: प्रसूवरी: -ऋ० १०/९७/३"। वेद यह भी कहता है "मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव। मधुमत्पर्णं मधुमत्पुष्पमासां अर्थात् ओषधियों का मूल, मध्य, अग्र, पत्ते, फूल सभी कुछ मधुमय हों -अथर्व० ८/७/१२"।

वेद मनुष्य को प्रेरित करता है "मापो मौषधीर्हिंसी: अर्थात् तू जलों की हिंसा मत कर, ओषधियों की हिंसा मत कर -यजु० ६/२२"। जलों की हिंसा से अभिप्राय है उन्हें प्रदूषित करना तथा ओषधियों की हिंसा का तात्पर्य है उन्हें विनष्ट करना।

ओषधियों के विषय में ऋग्वेद का दशम मण्डल का ९७वाँ सूक्त, जिसे ओषधि-सूक्त कहा जाता है, विशेष उल्लेखनीय है, जिसका प्रथम मन्त्र है—

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥ -ऋ० १०/९७/१

देवों से तीन युग पूर्व जो ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, उन भूरे वर्ण की ओषधियों के एक सौ सात धामों अर्थात् रूपों या स्थानों का मैं मनन करता हूँ। इस सूक्त में ओषधियों को माता कहकर सम्बोधित किया गया है और उनके रोग-निवारक गुणों का वर्णन है; आगे चलकर चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता जैसे आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसी वनस्पति-ज्ञान का सुव्यवस्थित विकास हुआ [17], [18]। इस दृष्टि से जैव-विविधता का संरक्षण केवल पारिस्थितिक नहीं, चिकित्सा-सम्बन्धी आवश्यकता भी है।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में ओषधियों के पांच वर्ग बताए गए हैं तथा यह भी कहा गया है कि ये हमें प्रदूषण (अहंस्) से छुड़ाएं-

पञ्च राज्यानि वीरूधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ -अथर्व० ११/६/१५

'सोम, दर्भ, भंग, यव, सहस्' आदि ओषधियों का ज्ञानपूर्वक प्रयोग करते हुए हम रोगों का समूल विनाश करते हैं।

वेद में घरों के समीप कमल-पुष्पों से अलंकृत छोटे-छोटे सरोवर बनाने का विधान मिलता है- उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणी: समन्ता: -अथर्व ४/३४/५,-७। फव्वारों का विधान इस हेतु किया गया प्रतीत होता है कि ऊपर उठती तथा चतुर्दिक् फैलती जल-धाराओं पर जब सूर्य-किरणें पड़ती हैं, तब उनमें प्रदूषण को हरने की विशेष शक्ति आ जाती है।

अथर्ववेद के भूमिसूक्त में भूमि को कहा गया है, "अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु अर्थात् तेरे जंगल हमारे लिए सुखदाई हों। -अथर्व० १२/१/११,१७"।

वन के प्रति वैदिक चेतना का सबसे सजीव चित्र ऋग्वेद के अरण्यानी-सूक्त में मिलता है, जो वन की अधिष्ठात्री देवी को सम्बोधित है—

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीं३॥ -ऋ० १०/१४६/१

हे अरण्यानी! तू जो दूर जाकर मानो लुप्त हो जाती है, तू ग्राम के विषय में क्यों नहीं पूछती, क्या तुझे भय नहीं लगता? इस सूक्त में वन को निर्भय, फल-पुष्प से सम्पन्न और अन्न की प्रदात्री बताया गया है, अर्थात् वन को केवल काष्ठ का स्रोत नहीं बल्कि जीवन के पोषक तन्त्र के रूप में देखा गया है [2]। परवर्ती परम्परा में वृक्ष-रोपण का यह भाव एक सुभाषित में बहुत प्रसिद्ध हुआ, जो मत्स्यपुराण में मिलता है—

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥ -मत्स्यपुराण १५४/५१२

दस कुओं के समान एक बावड़ी, दस बावड़ियों के समान एक सरोवर, दस सरोवरों के समान एक पुत्र और दस पुत्रों के समान एक वृक्ष होता है। यह वचन वेद का नहीं, पुराण-परम्परा का है [16], परन्तु वैदिक वृक्ष-चिन्तन की ही परिणति है, और आगे के अंशों में उद्धृत 'दशपुत्र समो द्रुमः' इसी सुभाषित का सार है। इसी परम्परा में सुरपाल का वृक्षायुर्वेद (लगभग ग्यारहवीं शताब्दी) वृक्षों के रोपण, सिंचन, रोग-चिकित्सा और पोषण का विधिवत् शास्त्र प्रस्तुत करता है [19], और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजकीय वनों के संरक्षण तथा अनधिकृत वृक्ष-कटाई पर दण्ड का विधान मिलता है [20]। आधुनिक आँकड़े इस चेतना की आवश्यकता को और स्पष्ट करते हैं: संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन के वैश्विक वन-संसाधन आकलन 2020 के अनुसार 2015 से 2020 के बीच विश्व में प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ हेक्टेयर वन-भूमि का वनोन्मूलन हुआ [22]।

जल जीवन का प्रमुख तत्त्व है। वेद का कथन है "अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम् अर्थात् शुद्ध जलों के अन्दर अमृत होता है, ओषध का निवास रहता है -ऋ० १/२३/१९"। "आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि अर्थात् शुद्ध जल के सेवन से मनुष्य रसवान् हो जाता है -ऋ० १/२३/२३"। "उर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पय: कीलालं परिस्रुतम् अर्थात् शुद्ध जलों में ऊर्जा, अमृत, तेज एवं पोषक रस का निवास होता है -यजु० २/३४"। "शुद्ध जल पान किये जाने पर पेट के अंदर पहुंचकर पाचन-क्रिया को तीव्र करते हैं। वे दिव्यगुणयुक्त, अमृतमय, स्वादिष्ट जल रोग न लानेवाले, रोगों को दूर करनेवाले, शरीर के प्रदूषण को दूर करनेवाले तथा जीवन-यज्ञ को बढ़ानेवाले होते हैं -यजु० ४/१२"। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में 'शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु' अर्थात् जल की शुद्धता को जीवन के लिए आवश्यक माना है [अथर्ववेद १२.१.३०]।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥ -ऋ० १०/९/१

शुद्ध जल आरोग्यदायक होते हैं, शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, वृद्धि प्रदान करते हैं, कण्ठस्वर को ठीक करते हैं तथा दृष्टि-शक्ति बढ़ाते हैं।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥ -ऋ० १०/९/२

हे जलो! तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणकारी रस है, उसमें हमें भागीदार बनाओ, जैसे स्नेहमयी माताएँ अपने शिशुओं को अपना दूध पिलाती हैं। इस मन्त्र में जल को माता का रूप दिया गया है, जो जल के प्रति कृतज्ञता और संरक्षण-भाव का आधार बनता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सुरक्षित पेयजल की उपलब्धता जन-स्वास्थ्य की बुनियादी शर्त है, क्योंकि असुरक्षित जल से हैजा, पेचिश और टाइफाइड जैसे रोग फैलते हैं [24]।

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः॥ -ऋ० १०/९/४

शुद्ध जलों का पान करके एवं उन्हें अपने चारों ओर बहाकर अर्थात् उनमें डुबकी लगाकर या कटि-स्नान करके हम अपना स्वास्थ्यरूप अभीष्ट प्राप्त कर सकते हैं।

जलों के प्रकार- वेदों में जल कई प्रकार के वर्णित किये गए हैं और उनके सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वे सबके लिए प्रदूषणशामक एवं रोगशामक हों:

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः॥
शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः॥ -अथर्व० १९/२/१-२

इन मन्त्रों में जलों के निम्नलिखित प्रकारों का उल्लेख हुआ है:

१. हिमालय के जल (हेमवती: आप:)- ये हिमालय पर बर्फ-रूप में रहते हैं अथवा चट्टानों के बीच में बने कुंडों में भरे रहते हैं, अथवा पहाड़ी झरनों के रूप में झरते रहते हैं।

२. स्रोतों के जल (उत्स्या: आप:)- ये पहाड़ी या मैदानी भूमि को फोड़कर चश्मों के रूप में निकलते हैं। कई चश्मों में गन्धक होता है, गन्धक का एक चश्म देहरादून के समीप सहस्रधारा में है।

३. सदा बहते रहनेवाले जल (सनिष्यदा: आप:)- ये सदा बहते रहने के कारण अधिक प्रदूषित नहीं हो पाते हैं।

४. वर्षाजल (वर्ष्या: आप:)- वर्षा से मिलनेवाले जल शुद्धि तथा ओषधि-वनस्पतियों एवं प्राणियों को जीवन देनेवाले होते हैं। अथर्ववेद के प्राण-सूक्त (११/४/५) में कहा है कि जब वर्षा के द्वारा प्राण पृथिवी पर बरसता है तब सब प्राणी प्रमुदित होने लगते हैं।

५. मरुस्थलों के जल (धन्वन्या: आप:)- मरुस्थलों की रेती में अभ्रक, लोहा आदि पाए जाते हैं, उनके सम्पर्क से वहां के जलों में भी ये पदार्थ विद्यमान होते हैं।

६. आर्द्र प्रदेशों के जल (अनूप्या: आप:)- जहां जल की बहुतायत होती है वे प्रदेश अनूप कहलाते हैं, तथा उन प्रदेशों में होनेवाले जल अनूप्य। यहां के जल कृमि-दूषित भी हो सकते हैं।

७. भूमि खोदकर प्राप्त किये जल (खनित्रिमा: आप:)- कुएं, हाथ के नलों आदि के जल इस कोटि में आते हैं।

८. घड़ों में रखे जल (कुम्भेभि: आभृता: आप:)- घड़े विभिन्न प्रकार की मिट्टी के तथा सोना, चांदी, तांबा आदि धातुओं के भी हो सकते हैं।

जल-प्रकारों का यह वर्गीकरण आधुनिक जल-विज्ञान की श्रेणियों—हिमनद एवं हिम-पिघलन, झरने एवं भूजल-स्रोत, प्रवाही नदियाँ, वर्षा-जल, शुष्क क्षेत्रों का जल, आर्द्र-भूमि का जल, कूप एवं नलकूप तथा संग्रहित जल—से उल्लेखनीय रूप से मेल खाता है। इसमें यह बात अन्तर्निहित है कि जल की गुणवत्ता उसके स्रोत, भू-रासायनिक सम्पर्क और प्रवाह पर निर्भर करती है; इसी कारण ऊपर मरुस्थली जल में खनिज, आर्द्र क्षेत्रों के जल में कृमि-दूषण तथा सदा बहने वाले जल में अपेक्षाकृत कम प्रदूषण का उल्लेख है। आज भी भूजल में आर्सेनिक और फ्लोराइड जैसे भू-जनित प्रदूषक जन-स्वास्थ्य की गम्भीर समस्या हैं, और विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पेयजल में आर्सेनिक की मार्गदर्शी सीमा 10 माइक्रोग्राम प्रति लीटर निर्धारित की है [24]। मन्त्रों में कुम्भ अर्थात् घड़ों में रखे जल का उल्लेख सुरक्षित जल-भण्डारण की परम्परा का

संकेत देता है, क्योंकि स्वच्छ पात्र में संग्रहित जल का गुण-रक्षण उसके पुनः-प्रदूषण को रोकने पर निर्भर करता है।

जल-शोधन- जलों को प्रदूषित न होने देने तथा प्रदूषित जलों को शुद्ध करने के कुछ उपायों का संकेत भी वेदों में मिलता है।

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वेदेवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ -ऋ० ७/४९/४

वे दिव्य जल हमारे लिए सुखदायक हों, जिनमें वरुण, सोम, विश्वेदेवा: तथा वैश्वानर अग्नि प्रविष्ट हैं।

यहां वरुण शुद्ध वायु या कोई जलशोधक गैस है, सोम चन्द्रमा या सोमलता है, विश्वेदेवा: सूर्यकिरणें हैं तथा वैश्वानर अग्नि सामान्य आग या विद्युत् है।

इसी सूक्त का दूसरा मन्त्र जल के चार स्रोतों—दिव्य, प्रवाही, खोदकर निकाले गए और स्वतः उत्पन्न—को एक साथ स्मरण करता है और सबसे संरक्षण की प्रार्थना करता है—

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ -ऋ० ७/४९/२

जो जल आकाश से बरसते हैं, जो नदियों में बहते हैं, जो खोदकर निकाले जाते हैं या जो स्वयं उत्पन्न होते हैं, और जो समुद्र की ओर जाने वाले, शुद्ध तथा पवित्र करने वाले हैं, वे दिव्य जल यहाँ मेरी रक्षा करें। जल को 'शुचि' और 'पावक', अर्थात् स्वयं शुद्ध और दूसरों को शुद्ध करने वाला कहा गया है। आयुर्वेद के सुश्रुतसंहिता (सूत्रस्थान) में जल को उबालकर, सूर्य की धूप में तपाकर, तप्त लोहे अथवा बालू से गुजारकर तथा कमल, शैवाल आदि के प्रयोग से शुद्ध करने की विधियाँ मिलती हैं, जो जल-शोधन की वैदिक चिन्ता की परवर्ती व्यावहारिक परिणति हैं [18]।

ऋग्वेद में लिखा है "यन्नदीषु यदोषधीभ्य: परि जायते विषम्। विश्वेदेवा निरितस्तत्सुवन्तु अर्थात् यदि नदियों में विष उत्पन्न हो गया है तो सब विद्वान् जन मिलकर उसे दूर कर लें -ऋ० ७/५०/३"। नदियों के प्रदूषण को दूर करने का दायित्व यहाँ 'सब विद्वान् जन' के सामूहिक प्रयास पर रखा गया है, जो आज की सहभागी जल-प्रबन्धन-व्यवस्था की धारणा से मेल खाता है।

वेदों में पृथ्वी की परिशुद्धि के लिए अनेक निर्देश मिलते हैं। पृथ्वी के दूषित होने पर मनुष्य संकट में पड़ सकता है। पृथ्वी के प्रदूषण से भयंकर भुखमरी का संकट बना रहता है। भूमि को वेद में माता कहा गया है "माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या: -अथर्व० १२/१/१२", "उपहूता पृथिवी माता -यजु० २/१०"। अथर्ववेद में पृथ्वी की महत्ता समझाई गई है। इसे शुद्ध एवं पवित्र रखना तथा भूमि को बचाना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। पृथ्वी में मातृत्व की भावना भरके उसे प्रदूषण से बचाने का यत्न ही तो है। (कोई भी सन्तान माता का दोहन करके उसे प्रदूषित नहीं करेगी।) वेद कहता है-

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥ -अथर्व० १२/१/९

जिस भूमि की सेवा करनेवाली नदियां दिन-रात समान रूप से बिना प्रमाद के बहती रहती हैं वह भूरिधारा भूमिरूप गौ माता हमें अपना जलधार-रूप दूध सदा देती रहें।

भूमि-सूक्त का आरम्भ ही उन मूल्यों के स्मरण से होता है जिन पर पृथ्वी टिकी है—

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥ -अथर्व० १२/१/१

सत्य, महान् ऋत, उग्र तेज, दीक्षा, तप, ज्ञान और यज्ञ—ये पृथ्वी को धारण करते हैं; भूत और भविष्य की वह स्वामिनी पृथ्वी हमारे लिए विस्तृत लोक प्रदान करे। यहाँ 'भूतस्य भव्यस्य' पद ध्यान देने योग्य है, क्योंकि पृथ्वी को वर्तमान और भावी, दोनों पीढ़ियों की सम्पदा माना गया है, जिसे सतत विकास की अन्तर-पीढ़ीगत समानता की धारणा के निकट रखा जा सकता है [9], [28]।

भूमि की हिंसा न करें- वेद मनुष्य को प्रेरित करते हुए कहता है "पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह, पृथिवीं मा हिंसी: अर्थात् तू उत्कृष्ट खाद आदि के द्वारा भूमि को पोषक तत्त्व प्रदान कर, भूमि को दृढ़ कर, भूमि की हिंसा मत कर"। भूमि की हिंसा करने का अभिप्राय है उसके पोषक तत्त्वों को लगातार फसलों द्वारा इतना अधिक खींच लेना कि फिर वह उपजाऊ न रहे। भूमि पोषकतत्त्वविहीन न हो जाये एतदर्थ एक ही भूमि में बार-बार एक ही फसल को न लगाकर विभिन्न फसलों को अदल-बदलकर लगाना, उचित विधि से पुष्टिकर खाद देना आदि उपाय हैं। आजकल कई रासायनिक खाद ऐसे चल पड़े हैं, जो भूमि की उपजाऊ-शक्ति को चूस लेते हैं या भूमि की मिट्टी को दूषित कर देते हैं।

मृदा-विज्ञान की दृष्टि से यह चेतावनी अत्यन्त सटीक है। खाद्य एवं कृषि संगठन तथा अन्तर-सरकारी तकनीकी मृदा पैनल की रिपोर्ट के अनुसार विश्व की लगभग एक-तिहाई भूमि मध्यम से उच्च स्तर तक क्षरित हो चुकी है, और मृदा-कार्बनिक पदार्थ की हानि इसका प्रमुख कारण है [26]। फसल-चक्र, दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन-स्थिरीकरण और कार्बनिक खाद के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता और कार्बन-भण्डारण में वृद्धि होती है, जो मृदा-कार्बन-अधिग्रहण द्वारा जलवायु-परिवर्तन के शमन में भी सहायक है [27]। मृदा के सम्बन्ध में अथर्ववेद का यह मन्त्र भी उल्लेखनीय है, जिसमें भूमि को खोदने पर उसके शीघ्र पुनर्भरण की कामना की गई है—

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पितम्॥ -अथर्व० १२/१/३५

हे भूमि! मैं तेरे जिस भाग को खोदूँ, वह शीघ्र पुनः भर जाए; हे पवित्र करने वाली! मैं तेरे मर्मस्थान और हृदय को पीड़ा न पहुँचाऊँ। यह खनन और कृषि के लिए नैतिक सीमा-रेखा है: भूमि का उपयोग हो, परन्तु उसके जीवन-मर्म को क्षति न पहुँचे [28]।

भूमि में या भूतल की मिट्टी में यदि कोई कमी आ जाये तो उस कमी को पूर्ण किये जाने की ओर भी वेद ने ध्यान दिलाया है "यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य अर्थात् प्रजापति राजा विभिन्न उपायों द्वारा उस कमी को पूरा करे -अथर्व० १२/१/६१"। यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है "सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु उत्तानाया हृदयं यद् विकस्तम् अर्थात् उत्तान लेटी हुई भूमि का हृदय यदि क्षतिग्रस्त हो गया है तो मातरिश्वा वायु उसमें पुनः शक्ति-संधान कर दे -यजु० ११/३९"। मातरिश्वा वायु का अर्थ है अंतरिक्षसंचारी पवन, जो जल, तेज आदि अन्य प्राकृतिक तत्त्वों का भी उपलक्षक है। परन्तु यदि जल, वायु आदि ही प्रदूषित हो गए हों तो उनसे भूमि की क्षति-पूर्ति कैसे हो सकेगी?

आकाश की शुद्धि के लिए भी वेदों में मुख्य रूप से निर्देश दिया गया है। ध्वनि शक्ति शुभ और अशुभ दो प्रकार की होती है। अशुभ ध्वनि हानिकारक तथा पर्यावरण को प्रदूषित करती है। अथर्ववेद में कहा गया है कि यह वाणी भयंकर विनाश को उत्पन्न कर सकती है और शान्ति भी दे सकती है।

वैदिक परम्परा में आकाश का गुण शब्द माना गया है, इसलिए आकाश की शुद्धि का एक अर्थ ध्वनि के प्रदूषण से बचाव भी है। आधुनिक अध्ययनों के अनुसार सतत उच्च ध्वनि-स्तर से चिड़चिड़ापन, निद्रा-विघ्न और हृदय-रोग का जोखिम बढ़ता है, और विश्व स्वास्थ्य संगठन के यूरोपीय क्षेत्र के पर्यावरणीय ध्वनि दिशानिर्देशों में सड़क-यातायात के शोर के लिए औसत 53 डेसीबल से कम का स्तर अनुशंसित है [29]। भारत में ध्वनि प्रदूषण (विनियमन और नियंत्रण) नियम, 2000 आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक और शान्त क्षेत्रों के लिए दिन-रात की अलग-अलग सीमाएँ निर्धारित करते हैं [30]। आकाश अथवा ऊर्ध्व वायुमण्डल की शुद्धि का एक अन्य पक्ष समताप-मण्डलीय ओज़ोन-परत है, जिसके संरक्षण के लिए 1987 के मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल के अन्तर्गत ओज़ोन-क्षयकारी पदार्थों का उत्पादन चरणबद्ध रूप से बन्द किया गया [31]। इस प्रकार शान्तिपाठ के 'अन्तरिक्षं शान्तिः' को ध्वनि और ऊर्ध्व वायुमण्डल, दोनों के सन्तुलन की प्रार्थना के रूप में पढ़ा जा सकता है।

वैदिक संस्कृति में अग्निहोत्र या यज्ञ का बहुत महत्त्व है। प्रत्येक गृहस्थ एवं वानप्रस्थ के करने योग्य पांच यज्ञों में अग्निहोत्र का भी स्थान है, जिसे देवयज्ञ कहा जाता है। अग्निहोत्र यज्ञाग्नि में शुद्ध घृत एवं सुगन्धित, वायुशोधक, रोगनिवारक पदार्थों की आहुति द्वारा सम्पन्न किया जाता है। एक अग्निहोत्र वह है जो धार्मिक विधि-विधानों के साथ मन्त्रपाठपूर्वक होता है, दूसरे उसे भी अग्निहोत्र कह सकते हैं जिसमें मन्त्रपाठ आदि न करके विशुद्ध वैज्ञानिक या चिकित्साशास्त्रीय दृष्टि से अग्नि में वायुशोधक या रोगकृमिनाशक पदार्थों का होम किया जाता है। आयुर्वेद के चरक, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर, गदनिग्रह आदि ग्रन्थों में ऐसे कई योग वर्णित हैं, जिनकी आहुति अग्नि में देने से वायुमण्डल शुद्ध होता है तथा श्वास द्वारा धूनी अन्दर लेने से रोग दूर होते हैं। वेद में अनेक स्थानों पर अग्नि को पावक, अमीवचातन, पावकशोचिष्, सपत्नदंभन आदि विशेषणों से विशेषित करके उसकी शोधकता प्रदर्शित की गई है। यज्ञ का फल चतुर्दिक फैलता है (यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा) -यजु० ८/६२। अग्निहोत्र ओषध का काम करता है (अग्निष्कृणोतु भेषजम्) -अथर्व० ६/१०६/३। अग्निहोत्र से शरीर की न्यूनता पूर्ण होती है (अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण) -यजु० ३/१३। अग्नि वायुमण्डल से समस्त दूषक तत्त्वों का उन्मूलन करता है (अग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि) -ऋ० १०/८०/२। वेद मनुष्यों को आदेश देता है "आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम् अर्थात् तुम अग्नि में शोधक द्रव्यों की आहुति देकर वायुमण्डल को शुद्ध करो -साम० ६३"।

अग्निहोत्र की अवश्यकर्तव्यता की ओर संकेत करते हुए वेद कहते हैं-

स्वाहा यज्ञं कृणोतन अर्थात् स्वाहापूर्वक यज्ञ करो -ऋ० १/१३/१२, सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अर्थात् सुसमिद्ध अग्निज्वाला पर पिघले घी की आहुति दो -यजु० ३/२, अग्निमिन्धीत मर्त्य: अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह अग्नि प्रज्वलित करे -साम० ८२, सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यत अर्थात् सब मिलकर अग्निहोत्र किया करो -अथर्व० ३/३०/६।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्नि: प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता।
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्नि: सायं सायं सौमनसस्य दाता॥ -अथर्व० १९/५५/३-४

अग्निहोत्र का समय सायं और प्रातः है। सायं किया हुआ अग्निहोत्र प्रातःकाल तक वायुमण्डल को प्रभावित करता रहता है और प्रातः किये गए अग्निहोत्र का प्रभाव सायंकाल तक वायुमण्डल पर पड़ता है।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ -यजु० २१/६

अग्निहोत्र ऐसी विशाल, दिव्य, दीप्तिमयी, निश्छिद्र, कल्याणदायिनी, अखण्डित, निश्चित रूप से आगे ले जानेवाली, विधिविधानरूप सुन्दर चप्पुओं वाली, निर्दोष, न चूनेवाली नौका है जो सदा यजमान की रक्षा ही करती है।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां, प्राणो यज्ञेन कल्पतां, चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां,
श्रोत्रंयज्ञेन कल्पतां, वाग् यज्ञेन कल्पतां, मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पताम्॥ -यजु० १८/२९

अग्निहोत्र-रूप यज्ञ से आयु बढ़ती है, प्राण सबल होता है, चक्षु सशक्त होती है, श्रोत्र और वाणी सामर्थ्ययुक्त होते हैं, मन और आत्मा बलवान् बनते हैं।

ऋग्वेद में कहा है- सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति अर्थात् जो अग्निहोत्र करता है उसे सुवीर्य प्राप्त होता है, वह पुष्ट होता है -ऋ० ३/१०/३।

अग्निहोत्र और वायुशोधन के सम्बन्ध में चरकसंहिता का सन्दर्भ विशेष महत्त्व का है। उसके विमानस्थान (अध्याय ३, जनपदोद्ध्वंसनीय) में वायु, जल, देश (भूमि) और काल के दूषित होने को जनपदोद्ध्वंस, अर्थात् समुदाय के बड़े पैमाने पर रोगग्रस्त होने या महामारी का कारण बताया गया है, और उनके शोधन तथा औषधि-सेवन का निर्देश है [17]। यह दृष्टि आधुनिक जन-स्वास्थ्य के उस सिद्धान्त के बहुत निकट है जो वायु, जल और मृदा के पर्यावरणीय कारकों को रोग-भार का निर्धारक मानता है [8]। धूपन अर्थात् औषधीय धूम्र के प्रयोग की परम्परा आयुर्वेद और गृह्यसूत्रों में अनेक रूपों में मिलती है, जिसका लक्ष्य रोग-कीटाणुओं का निवारण और परिवेश की शुद्धि माना गया है [32]।

वैज्ञानिक दृष्टि से इस विषय में सावधानीपूर्वक कथन आवश्यक है। अग्निहोत्र के प्रभावों पर कुछ प्रारम्भिक अध्ययन किए गए हैं, परन्तु नियन्त्रित, बहु-स्थलीय और पुनरुत्पादन-योग्य अध्ययनों की संख्या अभी सीमित है, इसलिए वायु-शोधन के दावों को सुनिश्चित करने के लिए कणीय पदार्थ, वाष्पशील कार्बनिक यौगिक और सूक्ष्मजैविक भार के मापन-आधारित प्रयोग अपेक्षित हैं। यह भी स्मरणीय है कि किसी भी दहन-क्रिया में कण और गैसें उत्सर्जित होती हैं, और बन्द कक्ष में अधिक धूम्र स्वयं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है [8]। अतः अग्निहोत्र के पर्यावरणीय लाभ को सुरक्षित रूप से प्राप्त करने के लिए शुद्ध घृत, उपयुक्त समिधा और औषधीय द्रव्यों की सीमित मात्रा तथा पर्याप्त वायु-संचार का ध्यान रखना उचित है। यज्ञ का एक पारिस्थितिक पक्ष गीता के उस चक्र में भी दिखाई देता है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, जहाँ यज्ञ को वर्षा और अन्न से जोड़ा गया है; इसे आधुनिक भाषा में मनुष्य द्वारा प्रकृति से लिए गए संसाधनों के प्रतिदान की भावना के रूप में समझा जा सकता है।

आंधी, वर्षा और सूर्य द्वारा पर्यावरण-शोधन- प्राकृतिक रूप से आंधी, वर्षा और सूर्य द्वारा कुछ अंशों में स्वतः प्रदूषण-निवारण होता रहता है।

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोष:।
दिविस्पृग् यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन्॥ -ऋ० १०/१६८/१

वायु-रथ की महिमा को देखो। यह बाधाओं को तोड़ता-फोड़ता हुआ चला आ रहा है। कैसा गरजता हुआ इसका घोष है! आकाश को छूता हुआ, दिक्प्रांतों को लाल करता हुआ, भूमि की धूल को उड़ाता हुआ वेग से जा रहा है।

मानसून पवन रूप मरुत् मेह बरसाते हैं – वपन्ति मरुतो मिहम् -ऋ० ८/७/४। ये वर्षा द्वारा प्रदूषण को दूर करते हैं।

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम्।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा॥ -अथर्व० ३/३१/१

बदल की वृष्टि से हम उत्कृष्ट स्थिति को पा लेते हैं, सब पेड़-पौधे, पर्वत, भूप्रदेश धुलकर स्वच्छ हो जाते हैं, रोग दूर हो जाते हैं, प्राणियों की आयु लम्बी हो जाती है।

उभाभ्यां देव सवित: पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वत:॥ -यजु० १९/४३

प्रकृति में सूर्य भी प्रदूषण का निवारक है। वह अपने रश्मिजाल से तथा अपने द्वारा की जानेवाली वर्षा से पवित्रता प्रदान करता है।

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद् विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्वप्न्यं सुव॥ -ऋ० १०/३७/४

सूर्य अपनी ज्योति से अन्धकार को बांधता है, समस्त अन्नाभाव को, अन्नाहुति को, रोग को और दुःस्वप्न को दूर करता है।

वेद में कहा है "सा घा नो देव: सविता साविषदमृतानि भूरि अर्थात् सूर्य अमृत बरसाता है -अथर्व० ६/१/३", "सूर्य यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म: अर्थात् हे सूर्य, जो तेरा ताप है उससे तू उसे तपा डाल जो हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं -अथर्व० २/२१/१"।

वायु, वर्षा और सूर्य के इस शोधक-कार्य को आधुनिक वायुमण्डलीय एवं जल-विज्ञान भी मान्यता देता है। वर्षा द्वारा वायुमण्डल से कण और घुलनशील गैसों का धुल जाना 'आर्द्र निक्षेपण' कहलाता है, और यह प्राकृतिक वायु-शुद्धि की एक प्रमुख प्रक्रिया है; किन्तु जब वायु में सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइड अधिक हों तो यही वर्षा अम्लीय होकर मृदा, जल और वनस्पति को हानि भी पहुँचाती है [12]। इसीलिए प्राकृतिक शोधन-क्षमता का सम्मान तभी सार्थक है जब मानवीय उत्सर्जन उस क्षमता की सीमा से अधिक न बढ़े।

वर्तमान में मानव ने बहुत वैज्ञानिक प्रगति की है, किन्तु पर्यावरण के प्रति सचेत होने की आवश्यकता है। पर्यावरण के संरक्षण के प्रति सरकारी प्रयासों के अलावा हम सभी को भी अपना सहयोग देना चाहिए और पर्यावरण के प्रति जागरूक रहना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों में जहाँ विभिन्न प्रकार का पर्यावरण संरक्षण के उपाय बताये गये हैं वहाँ परिवार, समाज, राष्ट्र एवं व्यक्ति को भी संरक्षित होने की चर्चा की गई है। भाई-भाई से द्वेष न करे। किसी परिवार में माता-पिता और पुत्र तथा पति-पत्नी में वैमनस्य ना हो। अथर्ववेद के ऋषि के अनुसार वैमनस्यता अर्थात् प्रदूषण से बचने का एकमात्र उपाय द्वेष को दूर भगाना है। यह द्वेष हमारे चारों ओर की शान्ति को विनष्ट कर देता है और मन में क्षोभ उत्पन्न करता है। वैदिक ऋषियों ने हमें समझाया कि मनुष्य के जिस प्रकार के वचन हों उसी प्रकार का चिन्तन हो तथा उसी प्रकार के कर्म भी होने चाहिए तभी शान्ति स्वयं शान्तिमय बन सकती है। यह वेदों का समाज को प्रदूषण रहित बनाने का एक मूलमन्त्र है।

सामाजिक सद्भाव की यह भावना अथर्ववेद के सांमनस्य-सूक्त में अत्यन्त मार्मिक रूप से व्यक्त हुई है, जिसमें परिवार के सदस्यों के बीच प्रेम की तुलना नवजात बछड़े के प्रति गौ के स्नेह से की गई है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ -अथर्व० ३/३०/१

मैं तुम्हें सहृदय, परस्पर मेल वाला और द्वेष-रहित बनाता हूँ; तुम एक-दूसरे को उसी प्रकार चाहो जैसे गौ अपने नवजात बछड़े को चाहती है। ऋग्वेद के संज्ञान-सूक्त में यही भाव समाज के स्तर पर प्रकट हुआ है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥ -ऋ० १०/१९१/२

तुम साथ चलो, साथ बोलो, तुम्हारे मन एक-दूसरे को जानें, जैसे पूर्वकाल के देव अपना-अपना भाग मिल-जुलकर ग्रहण करते थे। जब समाज में संवाद, सहमति और साझेदारी हो तभी साझा संसाधनों—वायु, जल, वन और भूमि—का न्यायपूर्ण उपयोग सम्भव है। इस सन्दर्भ में यजुर्वेद की यह प्रार्थना सम्पूर्ण जीव-जगत् के प्रति मैत्री-दृष्टि का आधार प्रस्तुत करती है—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ -यजु० ३६/१८

सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ, हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें। यह मन्त्र केवल मनुष्यों के आपसी सम्बन्ध तक सीमित नहीं है, 'सर्वाणि भूतानि' पद में पशु, पक्षी और वनस्पति सहित सभी जीवों का समावेश है, और यही जैव-केन्द्रित पर्यावरण-नीतिशास्त्र की मूल भावना है [25]। इस प्रकार वैदिक दृष्टि में पर्यावरण का संकट केवल प्रौद्योगिकी या नीति का प्रश्न नहीं, बल्कि मन, वाणी और कर्म की एकता से जुड़ा चरित्र-सम्बन्धी प्रश्न भी है।

वेदों में पर्यावरण को संरक्षित करने के अनेकों उपाय बताये गये हैं। वनस्पतियों के दोहन से जो पृथ्वी प्रदूषित हो रही है और वृक्षों के काटने से जो वायु प्रदूषित हो रही है, हमें वृक्षों के महत्त्व को समझना होगा। हम वृक्षों का विनाश तथा पृथ्वी का दोहन न करें। 'दशपुत्र समो द्रुमः' अर्थात् वृक्ष जनहित की दृष्टि से दस पुत्रों के बराबर है। वृक्ष संसार के प्राणियों की रक्षा करते हैं और उन्हें प्राणवायु (ऑक्सीजन) प्रदान करते हैं। पर्यावरण संरक्षण के उपाय- वेदों में पर्यावरण को संरक्षित करने के उपायों को बताते हुए कहा है कि 'मापो मौषधीर्हिंसीर्धाम्नो धाम्नो राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च' यजुर्वेद ६/२२ अर्थात् जल को प्रदूषित मत करो और वृक्षों को हानि मत पहुँचाओ। ऋग्वेद में तो एक स्थान पर 'मा काकम्बीरमुद् वृहो...' ऋग्वेद ६/४८/१७ कह कर वृक्ष मत काटो का भाव व्यक्त किया है, क्योंकि वृक्ष प्रदूषकों को अवशोषित करते हैं। 'ओषधयः ओषद्धयन्ति, दोषं धयन्तीति वा' यजुर्वेद में वृक्षों को दुष्प्रभावों का शमन करने वाला कहा गया है – 'वनस्पतिः शमिता' यजुर्वेद २९/३५।

यहाँ उद्धृत 'ओषधयः ओषद्धयन्ति, दोषं धयन्तीति वा' वाक्य यास्क के निरुक्त (९/२७) में ओषधि शब्द की व्युत्पत्ति के रूप में मिलता है: ओषधियाँ वे हैं जो ताप या दोष को पी जाती हैं, अर्थात् शमन करती हैं [33]। इस निर्वचन से स्पष्ट है कि वैदिक और निरुक्त-परम्परा में वनस्पतियों को केवल भोजन या ईंधन का साधन नहीं, बल्कि दोष-शामक, अर्थात् प्रदूषण-शामक और रोग-शामक तत्त्व माना गया। संक्षेप में वैदिक उपायों को चार स्तरों पर रखा जा सकता है: पहला, व्यक्ति के स्तर पर संयमित उपभोग (ईशावास्य) और वाणी, चिन्तन तथा कर्म की एकता; दूसरा, समाज के स्तर पर सांमनस्य और जल-वायु जैसे साझा संसाधनों का सामूहिक संरक्षण; तीसरा, प्रकृति के स्तर पर वृक्ष-रोपण, वन-संरक्षण, जल-शोधन और भूमि का पोषण; और चौथा, अनुष्ठान के स्तर पर अग्निहोत्र जैसे यज्ञ-कर्म द्वारा वातावरण-शुद्धि का प्रयास।

इस अध्ययन की कुछ सीमाओं का उल्लेख भी आवश्यक है। वैदिक मन्त्रों की संख्या और पाठ विभिन्न शाखाओं एवं संस्करणों में किंचित भिन्न मिल सकते हैं, इसलिए यहाँ मन्त्र-संख्याएँ उसी रूप में दी गई हैं जिस रूप में वे मूल पाठ-सामग्री में उपलब्ध हैं, और उनका मिलान प्रामाणिक संस्करणों से करना वांछनीय है। मन्त्रों के पर्यावरणीय अर्थ का निर्धारण भाष्यकारों की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हो सकता है, अतः कई स्थानों पर इस लेख में दिए गए अर्थ व्याख्यात्मक हैं, न कि एकमात्र सम्भावित अर्थ। भविष्य के शोध में संस्कृत-भाषाविदों, पारिस्थितिकीविदों, जल-वैज्ञानिकों और चिकित्सा-वैज्ञानिकों के साझा कार्य की आवश्यकता है, ताकि अग्निहोत्र, जल-शोधन और ओषधि-ज्ञान जैसे दावों का प्रयोग-सिद्ध परीक्षण किया जा सके। इस दृष्टि से वैदिक चिन्तन आधुनिक पर्यावरण-विज्ञान का स्थान नहीं लेता, किन्तु उसे मूल्य, संवेदना और उत्तरदायित्व की वह पृष्ठभूमि देता है जिसके बिना तकनीकी समाधान अधूरे रह जाते हैं।

उपसंहार- वनस्पतियों के दोहन से जो पृथ्वी प्रदूषित हो रही है और वृक्षों के काटने से जो वायु प्रदूषित हो रही है, इसे रोकने के लिए हमें वृक्षों, जलों एवं वायु के महत्त्व को समझना होगा। वायु, जल, भूमि, आकाश, अन्न आदि पर्यावरण के सभी पदार्थों की शुद्धि के लिए वेद हमें जागरूक करते हैं तथा आई हुई अस्वच्छता को दूर करने का आदेश देते हुए हमें पर्यावरण शुद्धि के लिए वृक्षों को लगाने का सन्देश देते हैं। 'दशपुत्र समो द्रुमः' कहकर वृक्षों को लगाने का सन्देश देते हैं।

अंत में उपसंहार-रूप में हम कह सकते हैं कि वायु, जल, भूमि, आकाश, अन्न आदि पर्यावरण के सभी पदार्थों की शुद्धि के लिए वेद भगवान् हमें जागरूक करते हैं तथा आई हुई अस्वच्छता को दूर करने का आदेश देते हैं। पर्यावरण की शुद्धि के लिए वेद भगवान् वनस्पति उगाना, अग्निहोत्र करना, विद्युत, अग्नि, सूर्य एवं ओषधियों का उपयोग करना आदि उपायों को सुझाते हैं।

सन्दर्भ-सूची

[1] IPCC. (2021). Climate Change 2021: The Physical Science Basis. Contribution of Working Group I to the Sixth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change. Cambridge University Press.

[2] सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर. ऋग्वेद का सुबोध भाष्य. स्वाध्याय मण्डल, पारडी (गुजरात).

[3] सरस्वती, दयानन्द. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका. परोपकारिणी सभा, अजमेर.

[4] वेदालंकार, रामनाथ (प्रस्तोता: प्रियांशु सेठ; सहयोगी: डॉ. विवेक आर्य). वेदों में पर्यावरण विज्ञान (विश्व पर्यावरण दिवस, 5 जून पर विशेष रूप से प्रकाशित लेख).

[5] उपाध्याय, बलदेव. वैदिक साहित्य और संस्कृति. शारदा मन्दिर, वाराणसी.

[6] भगवद्दत्त. वैदिक वाङ्मय का इतिहास. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत).

[7] शर्मा, रघुनन्दन. वैदिक सम्पत्ति.

[8] WHO. (2021). WHO global air quality guidelines: Particulate matter (PM2.5 and PM10), ozone, nitrogen dioxide, sulfur dioxide and carbon monoxide. World Health Organization.

[9] WCED. (1987). Our Common Future. Oxford University Press.

[10] United Nations. (1972). Report of the United Nations Conference on the Human Environment, Stockholm, 5–16 June 1972 (A/CONF.48/14/Rev.1). United Nations.

[11] भारत का संविधान, अनुच्छेद 48-क एवं 51-क(छ) (संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अन्तःस्थापित).

[12] Likens, G. E., & Bormann, F. H. (1974). Acid rain: A serious regional environmental problem. Science, 184(4142), 1176–1179.
[13] सायणाचार्य. ऋग्वेद-भाष्य. वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे.
[14] NOAA Global Monitoring Laboratory. Trends in atmospheric carbon dioxide. https://gml.noaa.gov/ccgg/trends/
[15] Taiz, L., Zeiger, E., Møller, I. M., & Murphy, A. (2015). Plant Physiology and Development (6th ed.). Sinauer Associates.
[16] मत्स्यपुराण. गीताप्रेस, गोरखपुर.
[17] चरकसंहिता (चक्रपाणिदत्त की आयुर्वेददीपिका तथा हिन्दी 'विद्योतिनी' टीका सहित), सम्पा. शास्त्री, काशीनाथ एवं चतुर्वेदी, गोरखनाथ. चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी.
[18] सुश्रुतसंहिता (हिन्दी व्याख्या सहित), व्याख्याकार शास्त्री, अम्बिकादत्त. चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी.
[19] सुरपाल. वृक्षायुर्वेद (संस्कृत ग्रन्थ; लगभग ग्यारहवीं शताब्दी).
[20] कौटिल्य. अर्थशास्त्र (हिन्दी व्याख्या: वाचस्पति गैरोला). चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी.
[21] श्रीमद्भगवद्गीता (हिन्दी अनुवाद सहित). गीताप्रेस, गोरखपुर.
[22] FAO. (2020). Global Forest Resources Assessment 2020: Main report. Food and Agriculture Organization of the United Nations.
[23] ईशादि नौ उपनिषद् (शांकरभाष्य एवं हिन्दी अनुवाद सहित). गीताप्रेस, गोरखपुर.
[24] WHO. (2022). Guidelines for drinking-water quality: Fourth edition incorporating the first and second addenda. World Health Organization.
[25] सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर. यजुर्वेद का सुबोध भाष्य. स्वाध्याय मण्डल, पारडी (गुजरात).
[26] FAO & ITPS. (2015). Status of the World's Soil Resources: Main technical report. Food and Agriculture Organization of the United Nations and Intergovernmental Technical Panel on Soils.
[27] Lal, R. (2004). Soil carbon sequestration impacts on global climate change and food security. Science, 304(5677), 1623–1627.
[28] सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर. अथर्ववेद का सुबोध भाष्य. स्वाध्याय मण्डल, पारडी (गुजरात).
[29] WHO Regional Office for Europe. (2018). Environmental Noise Guidelines for the European Region. World Health Organization.
[30] पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार. ध्वनि प्रदूषण (विनियमन और नियंत्रण) नियम, 2000.
[31] UNEP. (1987). Montreal Protocol on Substances that Deplete the Ozone Layer. United Nations Environment Programme.
[32] सरस्वती, दयानन्द. संस्कारविधि (दैनिक अग्निहोत्र-विधि सहित). परोपकारिणी सभा, अजमेर.
[33] यास्क. निरुक्त (हिन्दी व्याख्या: उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'). चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी.